भक्त नामदेव

सो अनन्य जाकै असि मति न टरै हनुमंतै।
मैं सेव सचराचर रूप स्वामि भगंवत।।

हैदराबाद (दक्षिण) - के नरसीब्राह्मणी ग्राम में एक भगवद्भक्त छीपी (दर्जी) दामा सेठ नाम के रहते थे। इनकी पत्नी का नाम था गोणाई। इन्हीं भाग्यवान् दम्पति के यहाँ रविवार कार्तिक शुक्ल प्रतिपद् संवत् 1327 वि. को सूर्योदय के समय नामदेवजी का जन्म हुआ। यह कुल ही परम भागवत था। भगवान् विट्ठल के एकनिष्ठ उपासक युदसेठ जी पाँचवी पीढ़ी में दामाजी हुए थे। पूर्वजों की भगवनिष्ठा, सदाचार, सरल प्रकृति, अतिथि-सेवा आदि सब गुण उनमें थे। माता-पिता जो कुछ करते है, बालक भी वही सीखता है। नामदेव को शैशव से ही विट्ठल के श्रीविग्रह पूजा, विट्ठल के गुण-गान, 'विट्ठल' नामका जप आदि देखने - सुनने को निरन्तर मिला। वे स्वयं विट्ठलमय हो गये।

एक समय दामा सेठ को घर से कहीं बाहर जाना पड़ा। उन्होंने नामदेव पर ही घर में विट्ठल की पूजा का भार साँपा। नामदेव ने सरल हृदय से पूजा की और भगवान् को कटोरे में दूध का नैवेद्य अर्पित करके नेत्र बंद कर लिये। कुछ देर में नेत्र खोलकर देखते हैं कि दूध तो वैसा ही रखा है। बालक नामदेव ने सोचा कि 'मेरे ही किसी अपराध से विट्ठल प्रभु दूध नहीं पीते हैं।'' वे बड़ी दीनता से नाना प्रकार से प्रार्थना करने लगे और जब उससे भी काम न चला तो रोते-रोते बोले-विठोबा! यदि तुमने आज दूध नहीं पिया तो मैं जीवनभर दूध नहीं पीऊँगा। बालक नामदेव के लिये वह पत्थर की मूर्ति नहीं थी। वे तो साक्षात् पण्ढरीनाथ थे, जो पता नहीं क्यों रूठकर दूध नहीं पी रहे थे। बच्चे की प्रतिज्ञा सुनते ही वे दयामय साक्षात् प्रकट हो गये। उन्होंने दूध पिया। उसी दिन नामदेव हाथ से वे बराबर दूध पी लिया करते थे।

छोटी उम्र में ही जातीय प्रथा के अनुसार नामदेवजी का विवाह गोविन्द सेठ सदावर्ते की कन्या राजाई साथ हो गया था। पिता के परलोक - गमन के अनन्तर घरका भार इन्हीं पर पड़ा । स्त्री तथा माता चाहती थीं कि ये व्यापार में लगे; किंतु इन्होंने तो हरि-कीर्तन-व्यवसाय कर लिया था। नरसीब्राह्मणी गाँव छोडकर ये पण्ढरपुर आ बसे। यहाँ गोरा कुम्हार, साँवता माली आदि भक्तों से इनकी प्रीति हो गयी। चन्द्रभागा नदी का स्नान, भक्त पुण्डलीक तथा उनके भगवान् पाण्डूरंग के दर्शन और विट्ठल के गुणका कीर्तन- नामदेव की उपासना का यही स्वरूप था। नामदेव जी के अभंगों में विट्ठल की महिमा है, तत्त्वज्ञान है, भक्ति है और विट्ठल प्रति आभार का अपार भाव है।

श्रीज्ञानेश्वर महाराज नामदेवजी को तीर्थयात्रा में अपने साथ ले जाना चाहते थे। नामदेवजी ने कहा-आप पाण्डुरंग से आज्ञा दिला दें तो चलूँगा। भगवान् ने ज्ञानेश्वर जी से कहा-'नामदेव मेरा बड़ा लाड़ला है। मैं उसे अपने से क्षणभर के लिये भी दूर नहीं करना चाहता। तुम इसे ले तो जा सकते हो, पर इसकी सम्हाल रखना।' स्वयं पाण्डुरंग ने ज्ञानेश्वर को नामदेव का हाथ पकड़ा दिया।

नामदेवजी ज्ञानेश्वर महाराज के साथ तीर्थयात्रा को निकले। भगवच्चर्चा करते हुए वे चले तो जा रहे थे; पर उनका चित्त पाण्डुरंग के वियोग से व्याकुल था। ज्ञानेश्वर जी ने भगवान की सर्वव्यापकता बताते हुए समझाना चाहा तो वे बोले-'आपकी बात तो ठीक है; किंतु पुण्डलीक के पास खडे पाण्डुरंग को देखे बिना मुझे कल नहीं पड़ती।'

ज्ञानेश्वर महाराज के पूछने पर नामदेव ने भजन के सम्बन्ध में कहा-'मेरे भाग्य में ज्ञान कहाँ है। मैं न ज्ञानी हूँ, न बहुश्रुत। मुझे तो विठोबाकी कृपा का ही भरोसा है। मुझे तो नाम-संकीर्त्तन ही प्रिय लगता है। यही भजन है। गुण-दोष न देखकर सबसे सच्ची नम्रताका व्यवहार करना ही वन्दन है। समस्त विश्व में एकमात्र विट्ठल को देखना और हृदय में उनके चरणों का स्मरण करते रहना ही उत्तम ध्यान है। मुख से उच्चारण किये जाते हुए नाम में मनको दृढ़तापूर्वक लगाकर तल्लीन हो जाना ही श्रवण है। भगवच्चरणों का दृढ़ अनुसन्धान है। सर्वभाव से एकमात्र विट्ठलका ही ध्यान, समस्त प्राणियों में उन्हीं का दर्शन, सब ओर से आसक्ति हटाकर उनका ही चिन्तन भक्ति है। अनुराग से एकान्त में गोविन्द का ध्यान करने के सिवा अन्य कहीं भी विश्राम नहीं है।' प्रभास, द्वारका आदि तीर्थों के दर्शन करते हुए ये दोनों महापुरूष लौट रहे थे। मार्ग में बीकानेर के पास कौलायत गाँव में पहुँचकर दोनों को बड़ी प्यास लगी। पास में एक कुँआ तो था, पर वह सूख चुका था। ज्ञानेश्वर सिद्धयोगी थे। उन्होंने लघिमा सिद्धि से कुएँ के भीतर पृथ्वी के भीतर प्रवेश कर जल पिया और नामदेवजी के लिये जल ऊपर ले आये। नामदेवजी ने वह जल पीना स्वीकार नहीं किया। वे भावमग्र होकर कह रहे थे- 'मेरे विट्ठलको

मेरी चिन्ता नहीं है, जो मैं इस प्रकार जल पीऊँ ?' सहसा कुआँ अपने - आप जलसे भर गया। नामदेव ने इस प्रकार जल पिया।

कुछ दिनों में यात्रा करके वे पण्ढरपुर लौट आये। अपने हृदयधन पाण्डुरंग के दर्शन करके आनन्द में भरकर कहने लगे-मेरे मनमें भ्रम था, इसीलिये तो आपने मुझे भटकाया। संसार में अनेक तीर्थ हैं, पर मेरा मन तो चन्द्रभागी की और ही लगा रहता है। आपके बिना अन्य देवकी ओर मेरे चरण चलना नहीं चाहते। जहाँ गरूड़ चिह्नाकिंत पताकाएँ नहीं हैं, वह स्थान कैसा। जहाँ वैष्णवों का मेला न हो, जहाँ अखण्ड हरिकथा न चलती हो, वह क्षेत्र भी कैसा।

ज्ञानेश्वर महाराज के समाधि लेने पर नामदेव जी उत्तर भारत में गये। नामदेव जी जीवन का पूवार्ध पण्ढरपुर में और उत्तरार्ध पंजाब आदि में भक्ति का प्रचार करते बीता। विसोबा खेचर से इन्हें पूर्ण ज्ञान का बोध हुआ था, अत: उन्हें गुरु मानते थे। जो मनुष्य सर्वत्र भगवान् का ही दर्शन करता है वही धन्य है। वही सच्चा भगवत् भक्त है। नामदेवजी प्रत्येक पदार्थ में केवल भगवान को ही देखते थे। इनकी इस सुदूर्लभ स्थिति का पता उनके जीवन की अनेक घटनाओं से लगता है।

एक बार नामदेवजी की कुटिया में एक ओर आग लग गयी। आप प्रेम में मस्त होकर दूसरी ओर की वस्तुएँ भी अग्नि में फेंकते हुए कहने लगे-'स्वामी! आज तो आप लाल-लाल लपटों का रूप बनाये बड़े अच्छे पधारे ; किंतु एक ही ओर क्यों? दूसरी ओर की इन वस्तुओं ने क्या अपराध किया है, जो इनपर आपकी कृपा नहीं हुई? आप इन्हें भी स्वीकार करे।' कुछ देर में आग बुझ गयी। कुटिया जल गयी वर्षाऋतु में, पर नामदेव को कोई चिन्ता ही नहीं। उनकी चिन्ता करनेवाले श्री विट्ठल स्वयं मजदूर बनकर पधारे और उन्होंने कुटिया बनाकर छप्पर छा दिया। तबसे पाण्डुरंग 'नामदेव की छान छा देनेवाले' प्रसिद्ध हुए।

एक बार नामदेवजी किसी गाँव के सूने मकान में ठहरने लगे। लोगों ने बहुत मना किया कि इसमें अत्यन्त निष्ठुर ब्रह्मराक्षस रहता है। आप बोले-'मेरे विट्ठल ही तो भूत भी बने होंगे। आधी रात को भूत आया। शरीर बड़ा भारी था। नामदेवजी उसे देखकर भावमग्न होकर नृत्य करने और गाने लगे-

भले पधारे लंबकनाथ।
धरनी पाँव स्वर्ग लौं माथा, जोजन भरके लाँबे हाथ।।
सिव सनकादिक पार न पावैं अनगिन साज सजायें साथ।
नमदेव के तुमही स्वामी, कीजै प्रभूजी मोहि सनाथ।।

अब भला, वहाँ प्रेतका कहाँ कैसे टिक सकता था। वहाँ तो शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्री पाण्डुरंग नामदेव के सामने प्रत्यक्ष खडे थे, मन्द-मन्द मुसकराते हुए।

एक बार नामदेवजी ने जंगल में पेड़ के नीचे रोटी बनायी, भोजन बनाकर लघुशंका करने गये। लौटकर देखते है। तो एक कुत्ता मुख में रोटी दबाये भागा जा रहा है। आपने घी की कटोरी उठायी और दौड़े उसके पीछे यह पुकारते हुए 'प्रभो! ये रोटियाँ रूखी हैं। आप रूखी रोटी न खायँ। मुझे घी चुपड़ लेने दें, फिर भोग लगायें।' भगवान् उस कुत्ते के शरीर से प्रकट हुए अपने चतुर्भुजरूप में। नामदेव उनके चरणों पर गिर पड़े।

महाराष्ट्र में प्रचलित वारकरी पन्थ के एक प्रकार से नामदेवजी ही संस्थापक हैं। अनेक लोग उनकी प्रेरणा से भक्ति के पावन पथ में प्रवृत हुए। 80 वर्ष की अवस्था में संवत् 1407 वि. में नश्वर देह त्याककर ये परमधाम पधारे।